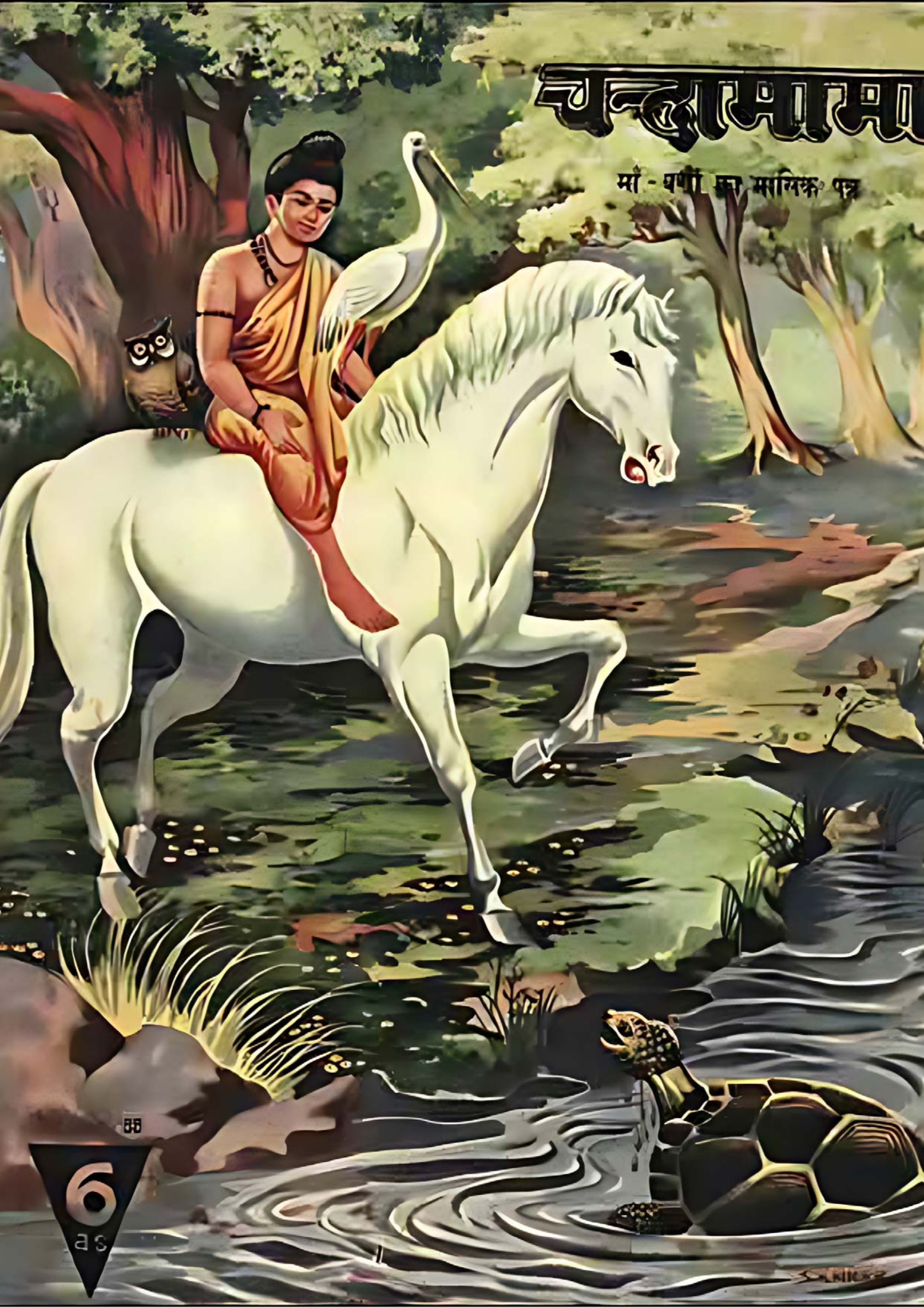

चन्दामामा
6
as



जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था, तब बोधिसत्व एक शेर के रूप में पैदा हुए। वह शेर एक पहाड़ी गुफा में अपनी पत्नी के साथ रहा करता था। एक दिन शेर को भूख लगी। वह पहाड़ से नीचे की ओर देखने लगा। पहाड़ के नीचे, हरे मैदान में, झील के किनारे, उसे कई खरगोश, हरिन वगैरह, खेलते-कूदते नज़र आये। तुरन्त शेर पहाड़ से उतरा और उनकी ओर लपका। उस तरफ जा ही रहा था कि वह झील के पासवाले दलदल में फँस गया। इस बीच में, शेर को आते देखकर, खरगोश, हरिन वगैरह बहुत डर गये और वहाँ से भाग गये।

जितना दलदल से बाहर निकलने का शेर प्रयत्न करता, उतना ही वह फँसता जाता। इसलिए वह यह प्रतीक्षा करता निश्चल खड़ा हो गया कि कोई आता-जाता उसकी मदद करेगा। पर उस तरफ कोई नहीं आया। एक सप्ताह बीत गया। शेर भूख के कारण व्याकुल था। तब एक लोमड़ी पानी पीने के लिए झील के पास आया। वह शेर को देखते ही यकायक रुक गया।

शेर ने लोमड़ी को देखकर कहा- "अरे लोमड़ी भय्या! सप्ताह से इस दल दल में फँसा पड़ा हूँ। मरने की नौबत आ रही है। मुझे जैसे-तैसे मेहरबानी करके इस दल दल से बचाओ।"

"तुम तो भूखे हो। मैं तुम्हारी मदद तो कर सकती हूँ, पर कहीं तुम मुझे मारोगे तो नहीं? तुम्हारा कैसे विश्वास किया जाय?" लोमड़ी ने कहा।

"जान बचानेवाले की जान लूँगा? अगर तुमने मझे बचा दिया तो मैं ज़िन्दगी

भर तुम्हारा कृतज्ञ रहेंगा। मेरा विश्वास करो।" सिंह ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

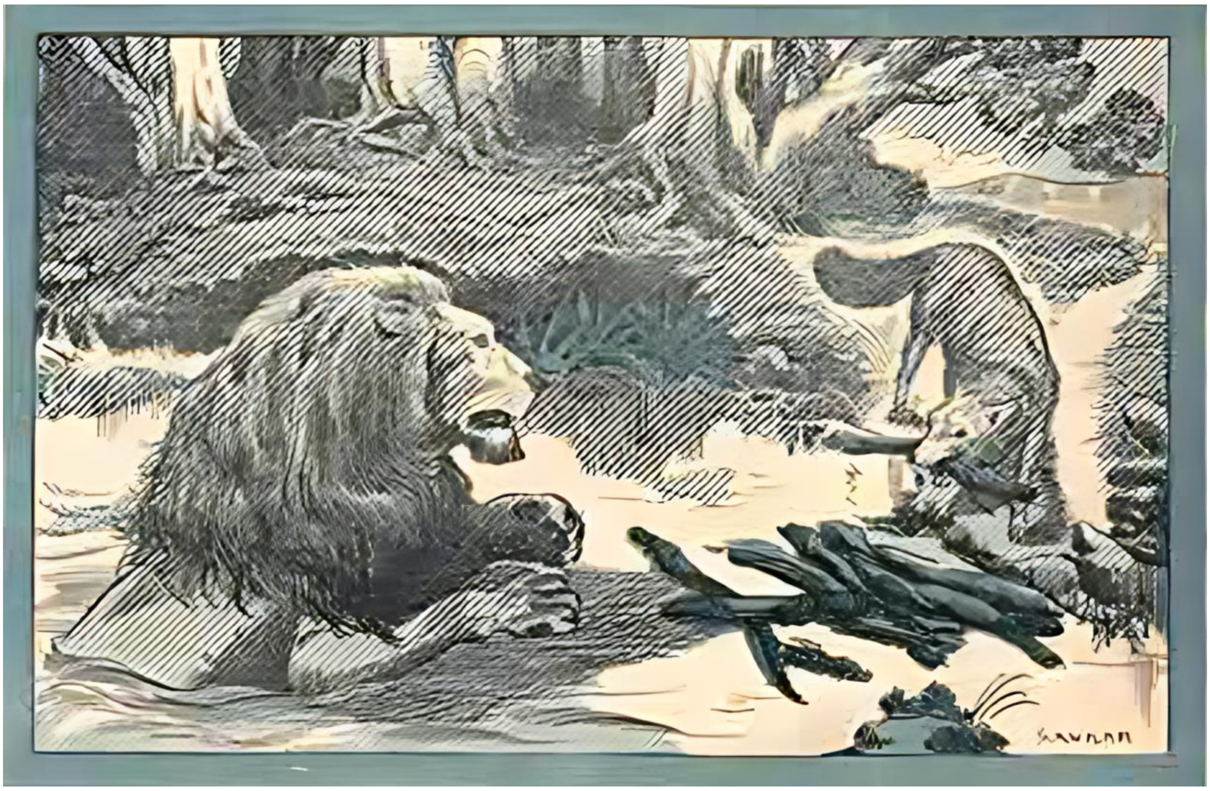
लोमड़ी ने, शेर का विश्वास कर सूखी लकड़ियाँ लाकर दलदल में डाल दी। उन पर पैर रखकर, शेर जैसे-तैसे बाहर निकल आया। फिर दोनों मिलकर शिकार खेलने गये। जङ्गल में घूम-घामकर आखिर शेर ने एक जानवर मारा। उसको शेर और लोमड़ी ने आपस में आधा आधा बाँटकर खा लिया।

"हम अब से भाई भाई हैं। क्यों तुम एक जगह रहो, और में किसी और जगह? अपने परिवार को मेरी गुफा में ले आओ। सब मिल-मिलाकर रहेंगे।" शेर ने कहा।

लोमड़ी भी मान गयी, और उसी दिन वह अपनी पत्नी के साथ शेर की गुफा में आयी और मजे से रहने लगी।

शेर यद्यपि लोमड़ी को भाई की तरह देखता था, तो भी उसकी पत्नी लोमड़ी की पत्नी को नीच ही समझती थी।

परन्तु चूँकि लोमड़ी की पत्नी अपनी जात को नीची समझती थी, इसलिए दोनों परिवारों में कोई खास मनमुटाव न हुआ। परन्तु होते होते, शेर और लोमड़ी के बच्चे पैदा हुये। उन दोनों के बच्चे आपस



में मिल-जुलकर खेलने-कूदने लगे। यह सब शेरनी को नहीं भाता था। लोमड़ी के बच्चे भी यह न मानते थे कि उनकी जात शेर की जात से नीची है। वे मजे में शेर के बच्चों के साथ रहते। शेर के बच्चे भी ऊँच नीच का भेद न मानते थे। वे लोमड़ी के बच्चों से हिल-मिलकर रहते। सूब शोर मचाते और दिन भर खेलते रहते।

शेरनी यह ज्यादा दिन न देख सकी। उसने अपने बच्चों को अलग बुलाकर कहा- "हम बड़े घर के हैं। तुम इतने हिल-मिल कर लोमड़ी के बच्चों से न खेला करो। हम ऊँची जात के हैं; वे नीच जाति के हैं। उन्हें दूर ही दूर रखा करो।" लोमड़ी की पत्नी को, शेरनी की मनोवृत्ति देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने इस बारे में पति से कहा। लोमडी को भी बहुत रञ्ज हुआ। जब अगले दिन लोमड़ी शेर के साथ शिकार करने जा रही थी तो उसने कहा-"आप राज परिवार के हैं। हम मामूली हैं। इसलिए हम दोनों का मिलकर रहना अच्छा नहीं है। अगर आपकी इज़ाज़त हो तो हम अपनी जातवालों के साथ रहने लगेंगे।"



शेर ने लोनड़ी में यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर आश्चर्य से उसका कारण पूछा। लोमड़ी ने सारी हालत सुना दी। गुफा वापिस आते ही शेर ने अपनी पत्नी से पूछा-"सुना है, तुम लोमड़ी के बच्चों को देखकर, नफरत करने लगी हो।"

"हाँ! मैं नहीं चाहती कि नीच जात के बच्चे हमारे बच्चों के साथ खेलें कूदें, बराबरी करें। मुझे नहीं मालूम कि लोमड़ी ने आप पर क्या जादू कर रखा है। अगर आप चाहते हैं तो आप लोमड़ी के साथ रहिये। मैं नहीं चाहती कि मेरे बच्चे इनकी सोहबत में रहकर दिन भर खेलते-कूदते रहें और बिगड़ जायें।" शेर की पत्नी ने कहा।

"यह बात है? लोमड़ी ने मुझपर क्या जादू किया है, सुनो। याद है, मैं एक बार सप्ताह भर घर न आया था। सप्ताह भर भूखा प्यासा में दलदल में फँसा पड़ा रहा। जब मेरी जान जा रही थी, और किसी ने मेरी मदद नहीं की थी, तब इसी लोमड़ी ने अक्लमन्दी से, मुझे दलदल में से निकालकर मेरे प्राण बचाये थे। अगर उस दिन यह लोनड़ी मेरी रक्षा न करती तो न मैं होता, न हमारे बच्चे ही। प्राण-रक्षा करनेवालों के साथ ऊँच-नीच का बर्ताव करना बहुत बड़ा अपराध है। यह तुम भूलती हो कि उनका अपमान करना सगे बन्धुओं का अपमान करने के बराबर है।" शेर ने कहा।

शेर की ये बातें सुनकर शेरनी बहुत शर्मिन्दा हो गयी और दौड़े दौड़े लोमड़ी की पत्नी के यहाँ जाकर उससे क्षमा माँगी। बाद में, सात पीढ़ियों तक, शेर की सन्तान, और लोमड़ी की सन्तान, एक ही गुफा में आपस में खेलने-कूदते, साथ साथ मिल जुलकर रहीं।





[५]

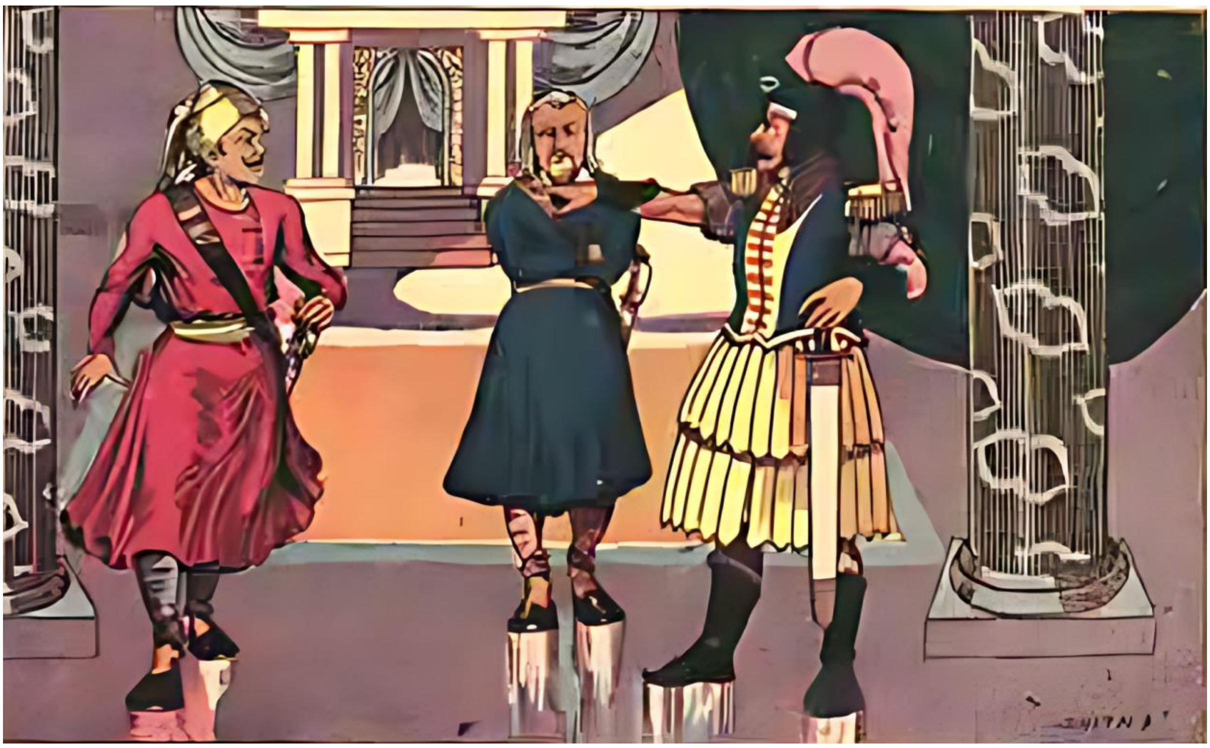
[मन्दरदेव और शिवदत्त का तो परिचय हो हो गया था न? शिवदत्त बता रहा था कि कुण्डलिनी द्वीप में किस तरह मनोरञ्जन के कार्यक्रम रचे जाते थे, कैसे देश में आराजकता पैदा हो गयी थी और आखिर शत्रुओं ने राजधानों को किस प्रकार घेर लिया था और किस हालत में नरवाहन को सेना के नेतृत्व की जिम्मेवारी सौंपी गयी थी। आदि आदि बाद में---]

शिवदत्त ज्यों ज्यों कहता जाता था, त्यों त्यों मन्दरदेव का आश्चर्य बढ़ता जाता था। उस महासमुद्र में वे नौकाएँ किस तरफ जा रही थीं, इस बारे में भी वह बेखबर था। आखिर उसने शिवदत्त से पूछा-"क्यों शिवदत्त? उस हालत में तुम खुद क्यों नहीं सेनापति बन गये और क्यों नरवाहन मिश्र को सेनापति बनने से नहीं रोका? अगर तुम ही उस वक्त सेनापति बन जाते तो सब ठीक हो जाता।"

यह सुन शिवदत्त ने हँसकर कहा- "मन्दरदेव! उन परिस्थितियों में यह उतना आसान काम न था। में भला स्वयं कैसे पूछता कि मुझे ही सेनापति का पद दिया जाय? पर एक धूर्त को यह जिम्मेवारी का काम सौंपना खतरे से खाली न था। मैं यह सोचने लगा कि क्या किया जाय। हम अजीब हालत में थे। मुझे चिन्तित देख समरसेन ने पूछा- 'शिवदत्त! क्या सोच रहे हो? अगर

कुछ कहना चाहते हो, तो बिना झिझके कहो।' तब मैने कहा- 'सेनापति! मैं यह सोच रहा हूँ कि इन परिस्थितियों में आपको स्वयं सेना का नेतृत्व करना चाहिये। दुश्मनों की ताकत के बारे में, जो उनके भेजे हुए सन्देश से ज़ाहिर है, हम लापरवाह नहीं रह सकते। अगर भगवान न करें, हमारी सेना को उनके हाथ थोड़ी भी चोट पहुँची, तो और भी हमारे विरुद्ध अपना झण्डा उठा देंगे। उनको बगावत करने का अच्छा मौका मिलेगा। इसलिए आप ही स्वयं सेना का नेतृत्व स्वीकार कीजिए।"

समरसेन ने एक क्षण सोच-विचारकर कहा-"अच्छा, तो ऐसा ही करूँगा।" परन्तु इस बीच में वहाँ नरवाहन मिश्र आ पहुँचा। उसको देखते ही समरसेन ने कहा- "नरवाहन! मैं तुम्हारे लिए खबर भेजने की ही सोच रहा था। खैर, तुम तुरन्त जाकर सेना को तैयार करवाओ। एक घण्टे में कम से कम दो हज़ार सैनिकों को इकट्ठा कर लिया जाना चाहिए। क्योंकि शाम होते होते दुश्मनों का नामो-निशान भी बाकी नहीं रहना चाहिए।"



वहाँ से जाते जाते नरवाहन मिश्र मेरी और देख, थोड़ा मुस्कुराया। उसकी मुस्कराहट जहरीली थी; उसमें ईर्ष्या भरी थी। परन्तु उस मुस्कराहट का वस्तुतः क्या रहस्य था, मैं उस समय ठीक तरह न जान सका। समरसेन ने मेरी तरफ मुड़कर कहा- "शिवदत्त! तुम भी अपने आदमियों को तैयार करो। किसी न किसी काम आयेंगे ही वे लोग। कम से कम तलबारों की जङ्ग तो साफ़ होगी।"

मैने देखते देखते पचीस सैनिकों को जमा कर लिया और उनको हथियार बगैरह देकर तैयार कर दिया। महासेनानी समरसेन के नेतृत्व में शत्रुओं से युद्ध किये अर्सा हो गया था। फिर लड़ने का मौका मिलता देख मैं बहुत खुश था ।

एक घण्टा गुजर गया। नरवाहन मिश्र सेना तैयार कर उसकी सूचना हमें देने आयेगा, हम दोनों-- में और समरसेन-- इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक घण्टे के बाद नरवाहन मिश्र आ भी गया। उसकी हालत देखकर हम दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी म्यान में तलवार न थी। उसके कपड़े भी फटे हुए थे। बाल बिखरे हुए





थे। चेहरे पर छोटे-मोटे घाव भी दिखायी दे रहे थे। वह बहुत डरा हुआ नज़र आता था । "क्यों नरवाहन? क्या हुआ है? क्यों इस तरह दिखायी देते हो?" समरसेन ने चिन्तित हो उससे पूछा।

नरवाहन ने बोलने का प्रयत्न किया। परन्तु ऐसा लगा, जैसे उसका गला रुन्ध गया हो। "लगता है, अब हालत हमारी काबू में नहीं है। अच्छा होगा कि हम किसी सुरक्षित स्थान पर भाग जायें, वरना खतरा है।" नरवाहन ने रुन्धी आवाज में कहा। यह सुनते ही समरसेन इस तरह उठा, जैसे साँप पूँछ के दबते ही फुँफकार मारता फण उठाता है। मैंने उसमें इतना गुस्सा और जल्दबाजी कभी न देखी थी।

"अपने ही राज्य में, और मैं, एक और सुरक्षित स्थान को भाग जाऊँ? इस कुण्डलिनी द्वीप का चप्पा चप्पा मेरे लिए सुरक्षित है, वह मेरी रक्षा कर सकता है। कहीं तू पागल तो नहीं हो गया है?" समरसेन ने कहा।

नरवाहन मिश्र कँप-सा गया। फिर समरसेन कुछ कहने ही जा रहा था कि किले की ड्योढ़ी पर भयङ्कर शोर-शरावा सुनायी देने लगा। हम इस तरह काँप उठे, जिस तरह वृक्ष तूफान में काँपते हैं।

"यह शोर क्या है?" समरसेन ने नरवाहन को तिरछी नज़र से देखते हुए रौबीली आवाज़ में पूछा।

"सेनानी! यही भयङ्कर ख़बर मैं बताने जा रहा था। सैनिक भी जनता के साथ मिल गये हैं। 'राजा को गद्दी से उतार दिया जाना चाहिए।' के नारे लगाते लगाते वे शहर की गली गली में चक्कर लगा रहे हैं; आन्दोलन कर रहे हैं। मैंने जब सैनिकों को समझाने का प्रयत्न

किया तो उन्होंने मेरी यह हालत कर दी। कुण्डलिनी देवी की कृपा है कि जान बचाकर मैं आप तक आ सका।" नरवाहन ने जोर से साँस लेते हुए कहा।

यह सुनते ही समरसेन पर बिजली-सी गिर पड़ी। समरसेन को यह जानकर बहुत ही दुःख हुआ कि के जिस जनता लिए उसने मान्त्रिकों के द्वीप में हर तरह की मुसीबतें झेली थी, जिनके लिए उसने समुद्र से लोहा लिया था, यही जनता आज उसकी आज्ञा का तिरस्कार कर रही थी। उस विचारे को यह न मालूम था कि तब से देश में क्या क्या परिवर्तन हो गये थे, और क्या क्या उलझी हुई परिस्थितियाँ पैदा हो गयी थीं।

"समरसेन। आप धीरज न खोइये। जैसे तैसे इस ख़तरे का मुकाबला करने का उपाय सोचिये।" मैने कहा।

समरसेन ने आह भरते हुए कहा-"शिवदत्त! यह न समझो कि में डर रहा हूँ या धीरज खो रहा हूँ। जनता को इस कृतघ्न रूप से बगावत करता देख मेरा दिल एक दम अङ्गारा हो रहा है। बस! इसके सिवाय और कुछ भी बात नहीं है।"



मैं उसको कैसे दिलासा देता? मैंने नरवाहन की ओर देखा। वह मूर्ति की तरह स्थिर खड़ा था। उसी समय ड्योढ़ी पर से और भी ज्यादा शोर-शराबा सुनाई पड़ा। एक पहरेदार हमारे पास दौड़ा दौड़ा आया। जब मैंने उससे पूछा कि क्या बात है, उसने कहा-"महा सेनानी! आफत आ पड़ी है। लोग ड्योढ़ी का दरवाजा तोड़ रहे हैं।"

समरसेन का सिर झुका रह गया। इस में भी सन्देह था कि उसने उस पहरेदार की बात सुनी थी कि नहीं। मैंने ज्योंही



बोलना चाहा तो उन्होंने मेरी तरफ सिर उठाकर देखा। उनके देखने का मतलब भी मेरी समझ में आ गया था।

"मृगशालाधिपति को तुरन्त यहाँ बुलाकर लाओ।" मैंने पहरेदार को आज्ञा दी। थोड़ी देर में वहाँ मृगशालाधिपति आ गया। उसके आते ही मैंने आज्ञा दी-"पिञ्जड़ों में जितने क्रूर जन्तु बन्द हैं, उनको तुरन्त बाहर छोड़ दो। पर यह ख़याल रहे कि वे महल के आँगन और ड्योढ़ी से बाहर न जाने पायें। जरूरत पड़ने पर उनको फिर पिञ्जड़ों में बन्द करने के लिये नौकरों को तैयार रहने के लिये कहो।" मृगशालाधिपति को काटो तो खून नहीं। वह हिचकता झिझकता समरसेन की ओर देखने लगा। "शिवदत्त की आज्ञा मेरी आज्ञा है, उसका ठीक तरह पालन करो। समरसेन ने कहा।

"पर, महाराज! अगर एक बार उन क्रूर जन्तुओं को छोड़ दिया गया तो बाहर खड़ी जनता पर...."

मृगशलाधिपति कुछ कहना चाहता था। पर मैंने गुस्से में कहा-"वह सब तेरे लिये अनावश्यक है। जनता के लिये पहले यह जानना आवश्यक है कि ड्योढ़ी तोड़ देने से उनकी क्या हालत होगी।"

मृगशालाधिपति फौरन चला गया। मैंने नरवाहन की ओर देखा। वह दाँत कटकटाता क्रुद्ध नजर से मेरी ओर देख रहा था। उसकी क्या चाल है, जनता और सैनिकों के बग़ावत में उसका कितना हाथ है; इन प्रश्नों का उत्तर मुझे तब न मिल सका। दो चार मिनट में, शेरों और हाथियों के गर्जन से हमारे कान फूट से गये। क्रूर जन्तुओं के चीत्कार से सारा महल गूँज रहा था। वह बड़ा भयङ्कर दृश्य था।



समरसेन झट खड़ा होकर, जल्दी जल्दी, महल के सामने बने हुए, ऊँचे मण्डप पर गया। वहाँ से महल के सामने की खाली जगह, ड्योढ़ी के सीखंचे, और उसके बाद गली में शोर-शराबा करती जनता, सब दिखाई दे रहे थे।

समरसेन के पीछे पीछे मैं भी मण्डप में जाकर खड़ा हो गया। पिञ्जड़ों से छोड़े गये, जङ्गली क्रूर-जन्तु, आङ्गन में इधर उधर बिहार कर रहे थे। कई ड्योढ़ी के सीखचों में से बाहर खड़ी जनता पर चिंघाड़ चिंघाड़ कर पञ्जा दिखा रहे थे।

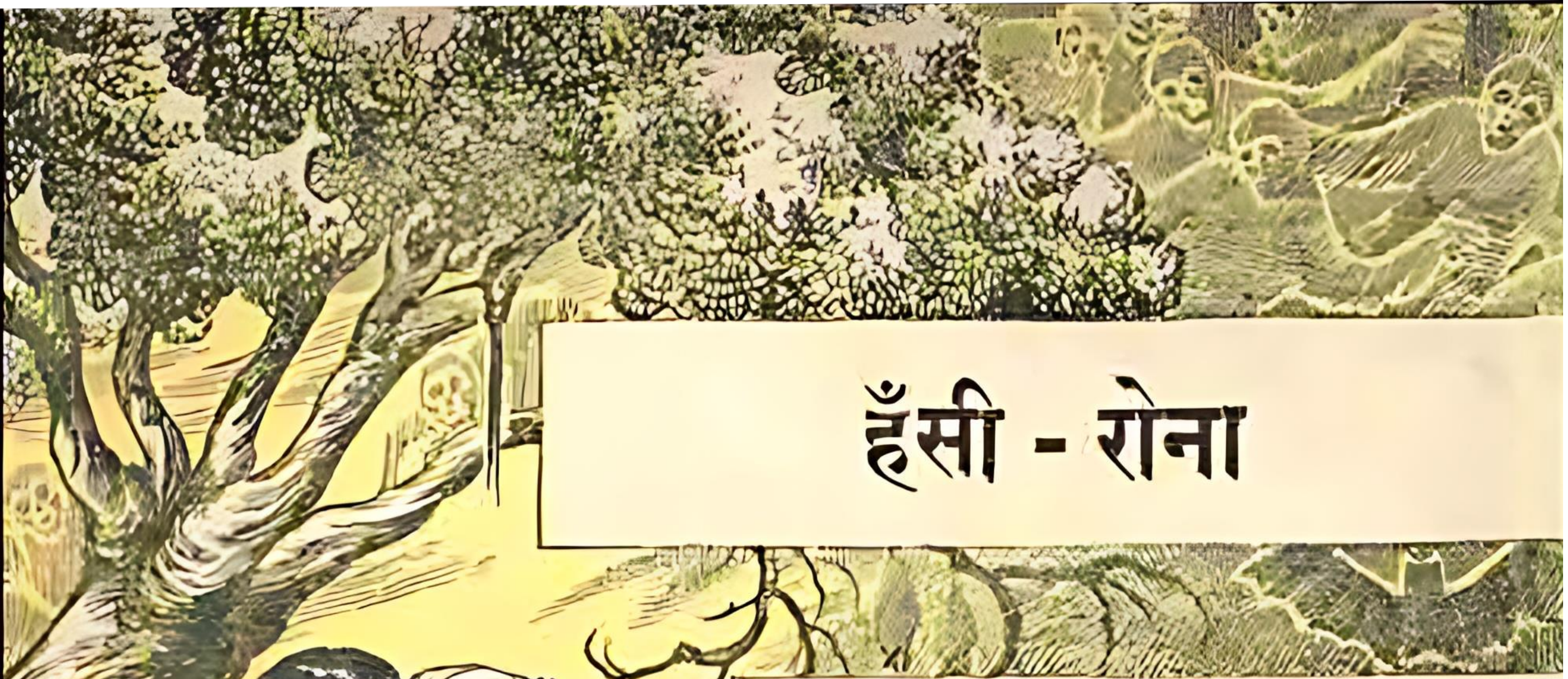
"शिवदत्त! तुम्हें अच्छा उपाय सुझा।" कहते कहते मेरी तरफ देखकर वे मुस्कराने लगे। "इन क्रूर जन्तुओं के डर के कारण ही वे ड्योढ़ी को तोड़ने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। परन्तु यह तत्कालिक उपाय ही है। इस अराजकता के कारण और उसके मूल नेता कौन है? इसका कुछ समझ में नहीं आ रहा है।" समरसेन ने पीछे मुड़कर देखते हुए कहा।

नरवाहन हमारे पीछे हाथ बाँध कर खड़ा था। उसने हमारे पास आकर कहा-"सेनानी! वे आन्दोलन कर रहे है कि राजा गद्दी छोड़ दें। उनके कौन नेता हैं, यह मैं भी नहीं जानता हूँ।"

समरसेन कुछ देर तक तो चुप रहा: फिर उसने कहा-"देश में इतनी अराजकता फैली हुई है, इसकी पहले मैने कल्पना भी न की थी। राजधानी के बाहर शत्रु हैं और अन्दर जनता में असन्तोष है। वे चाहते हैं कि राजा गद्दी पर से उतार दिया जाये, और वे राजगद्दी चाहते हैं। यही मौजूदा हालत है। क्यों शिवदत्त? इस में तुम्हारी क्या राय है?" उन्होंने मुझसे पूछा।

(अभी और है।)





हँसी - रोना



विक्रमार्क ने हार न मानी। ज़िद करके वह फिर पेड़ के पास गया। शव को पेड़ पर से उतार कर, कन्धे पर डाले जब वह चला जा रहा था, तो शव के अन्दरवाले वेताल ने कहा-"राजा! तुम्हें तो और लोगों से काम करवाने का अधिकार है; तुम्हें रात में, इस तरह बोझा ढोते देख मुझे अफसोस होता है। कहीं तुम होते ढोते थकथका न जाओ, इसलिए यह अजीब कहानी सुनाता हूँ, सुनो।" वेताल ने निम्न कहानी सुनानी शुरू की:-

वह अयोध्या नगरी, जिस पर कभी मर्यादा पुरुषोतम रामचन्द्र का राम था, उन दिनों वीरकेतु महाराजा की राजधानी थी। उस समय हर रोज़ अयोध्या में विचित्र विचित्र चोरियाँ हुआ करती। चोरियों से



तङ्ग आकर जनता ने राजा के सम्मुख निवेदन किया-"महाप्रभू! हमें जैसे तैसे चोरों के खतरे से बचाइये। लाख प्रयत्न करने पर भी चोरों का ठिकाना हमें नहीं मालूम हो रहा है। उनका पकड़ा जाना तो अलग, वे दिखायी भी नहीं देते हैं। परन्तु दिन-दहाड़े चोरी करते रहते हैं।"

वीरकेतु ने जनता को आश्वासन देकर भेज दिया और अपने कुछ सिपाहियों को वेष बदलकर, नगर में रात को गश्ती लगाने के लिये भेज दिया। उनकी खबरदारी के बावजूद, चोरियाँ पहले की तरह होती जाती थीं। आखिर एक चोर भी सिपाहियों के हाथ न लगा।

वीरकेतु जान गया कि चोरी करनेवाले बहुत अक्लमन्द और चालाक हैं और वे उसके सिराहियों के हाथ न आयेंगे। स्वयं वह चोरों को पकड़ने के लिए निकल पड़ा। जब वेष बदलकर वह रात में कहीं चला जा रहा था तो उसको एक आदमी अजीब हरकतें करता दिखायी दिया।

राजा उसकी तरफ गया। राजा को पास आता देख उसने पूछा-"तू कौन है?"

"चोर!" राजा ने कहा।

"तो तू हमारा साथी है न? आ, घर चलें; तेरी अच्छी आवभगत करूँगा।" उस व्यक्ति ने कहा।

राजा उसके साथ उसके घर गया। उसका घर जङ्गल में, जमीन के नीचे था। वहाँ जाने के रास्ते भी खुफिया थे। डाकू, राजा को एक कमरे में बिठाकर अन्दर चला गया। तब एक दासी ने आकर राजा से कहा-"तुम कौन हो? अगर तुम्हें इस चोर का पता-ठिकाना मालूम हो गया तो जान लो कि तुम्हारी जिन्दगी ख़तम हो गयी। तुरन्त यहाँ से तुम भाग जाओ।"

राजा तुरन्त वहाँ से चल पड़ा। जल्दी- जल्दी राजधानी में जाकर, हथियारबन्द सिपाहियों को लेकर वहाँ आ पहुँचा।

डाकू और सिपाहियों में घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि डाकू अकेला था, तो भी वह सिपाहियों से काफी देर तक बहादुरी से लड़ता रहा। उसने कई सिपाहियों को ढेर भी कर दिया। आखिर उसको राजा के सामने हार माननी पड़ी। वह पकड़ा गया।

बीरकेतु, डाकू के हाथ पैर बँधवाकर ले गया। उस पर मुकदमा चलाया गया। यह साबित हुआ कि वह डाकू ही बहुत दिनों से अयोध्या में डकैतियाँ कर रहा था। चोरी गया माल भी बरामद हुआ। राजा ने डाकू को सज़ा दी।

जब डाकू को राज-सैनिक दण्ड देने के लिए नगर से बाहर ले जा रहे थे, तो अयोध्या के सब से बड़े व्यापारी सेठ, रत्नदत्त की लड़की रत्नवती ने डाकू को देखकर, अपने पिता को बुलाकर कहा-"पिताजी! मेरा उस डाकू से विवाह कर दीजिये।" रत्नदत्त यह सुनकर मूर्ती-सा हो गया।

रत्नवती उसकी इकलौती लड़की थी और बहुत दिनों बाद पैदा हुई थी।



उसे बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा था। रत्नवती का सौन्दर्य देखकर, कई करोड़पति सेठों के पुत्र उससे विवाह करने के लिए आये थे। पर रत्नवती ने उनसे विवाह न किया। वह शादी करनी न चाहती थी।

"क्यों बेटी। तूने तो बड़े बड़े लखपतियो से शादी करने से इनकार कर दिया था। अब क्यों इस दुष्ट धूर्त डाकू से विवाह करना चाहती है?" रत्नदत्त ने पूछा।

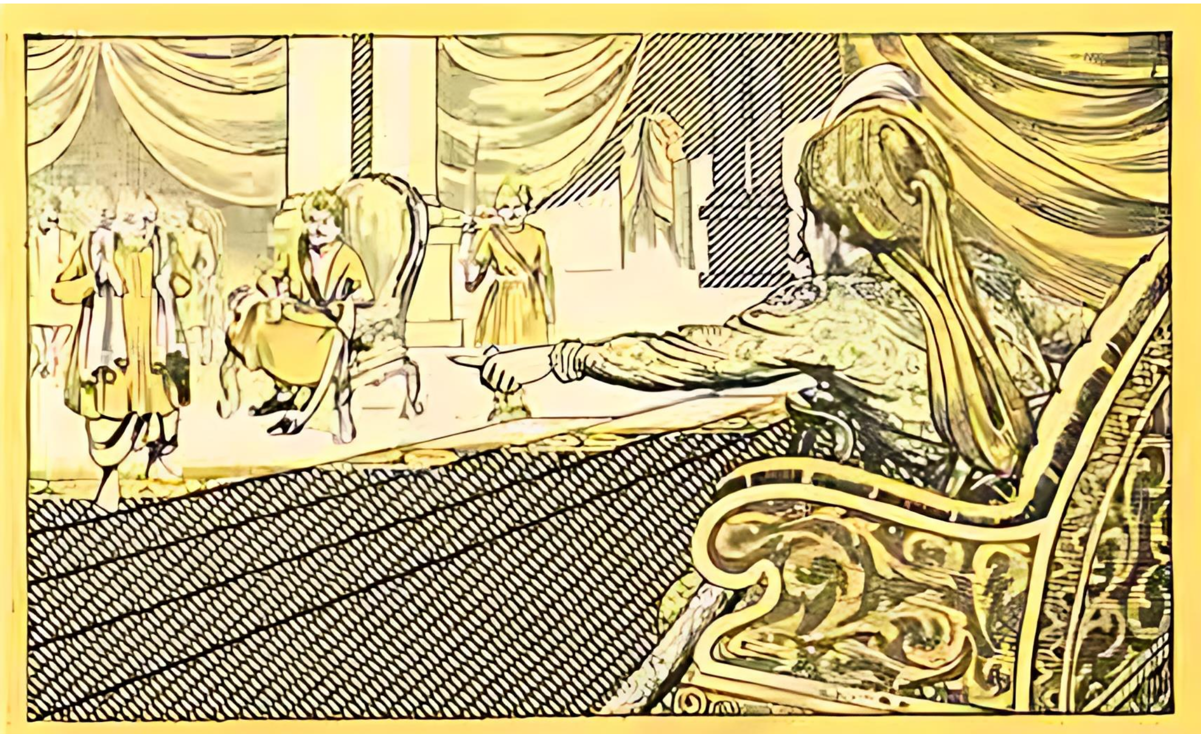
रत्नवती ने पिता की एक न सुनी। जब अनेक राजकुमार, रईस, उमराव उससे विवाह करने के लिए आये थे, तब पिता ने

उसको शादी करने की सलाह दी थी। परन्तु तब भी उसने पिता की सलाह न मानी थी। वह अपनी बात की पक्की थी।

"चाहे वह चोर हो, चाहे उसे सजा मिल रही हो, मैं उससे ही शादी करूँगी। मैंने उसे ही अपना पति चुना है। अगर आप चाहते हैं कि मेरा विवाह हो, तो मेरा उससे ही विवाह कीजिये। अगर आप यह नहीं कर सकते हैं तो मैं भी उसके साथ मर जाऊँगी।" रत्नवती ने कहा।

यह सुन रत्नदत्त को बड़ा रञ्ज हुआ। उसे मालूम था कि उसकी लड़की अपने निश्चय को किसी भी हालत में बदलनेवाली न थी। उसने महाराजा वीरकेतु के पास जाकर कहा- "महाप्रभू! डाकू को आप मुझे सौंप दीजिये। मैं आपको अपना सारा धन दे दूँगा।" पर राजा ने न माना। वह हरगिज़ न चाहता था कि ख़्वाहमख़्वाह उस डाकू को छोड़ दे, जिसने लोगों के नाक में दम कर रखा था। हताश हो, रत्नदत्त घर वापिस आ गया। उसकी लड़की साज-शृङ्गार कर दुल्हन बनी बैठी थी।

"बेटी, मैं कामयाब न हो सका। डाकू को छोड़ने के लिए राजा ने न माना। मैंने



यह भी कहा कि मैं अपना सर्वस्व दे दूँगा; परन्तु वे न माने। तेरी यह शादी नामुमकिन है।" रत्नदत्त ने अपनी लड़की से कहा। "विवाह न भी हुआ तो मैं सति हो जाऊँगी।" रत्नवती ने कहा।

रत्नवती पालकी में चढ़कर वध्यस्थल पर गयी। उसके साथ रोते-धोते उसके माँ बाप भी गये। उनके पहुँचते पहुँचते जल्लादों ने डाकू को फाँसी पर लटका दिया था। वह मरता जीता कराह रहा था।

रत्नदत्त ने अपनी लड़की को डाकू के पास ले जाकर कहा-"देखो बेटा! मेरी लड़की तुमसे ही शादी करने की जिद किये बैठी है।" वह सुन रत्नवती की ओर देखते देखते डाकू की आँखों में आँसू छलक आये। फिर वह एक क्षण मुस्कराया और बाद में उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

रत्नवती अपने "पति" का शरीर लेकर श्मशान को गयी; वहाँ चिता बनाकर, उसके साथ स्वयं भी उस पर बैठ गयी।

केवल मन में पति स्वीकार करने के कारण रत्नवती को सती होता देख, कालभैरव ने स्वयं प्रत्यक्ष होकर कहा-"बेटी! तेरी पति-भक्ति असाधारण है। तू जो वर चाहे, माँग ले।"



"देव! मैं अपने माँ-बाप की इकलौती लड़की हूँ। बड़े लाड-प्यार से पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया; इसलिए मेरे जाने पर वे फूट-फूटकर रोयेंगे। आप उनको सन्तान देने का अनुग्रह कीजिये। सन्तान को पा वे मुझे भूल जायेंगे।" रत्नवती ने कहा।

कालभैरव ने हँसकर कहा-"तेरी इच्छा पूरी कर दूँगा। पर क्या तू अपने लिए कुछ नहीं चाहती?"

"मुझे सिवाय अपने पति के साथ रहने के और कुछ नहीं चाहिये। वही मेरे लिए सब कुछ है।" रत्नवती ने कहा।

"मैं तेरी इस इच्छा को भी पूरी कर दूँगा।" कहते कहते कालभैरव ने मेरे हुए डाकू को जिला दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गया।

उसके दूसरे ही क्षण डाकू उठ बैठा। रत्नदत्त ने डाकू को घर ले जाकर उसके साथ अपनी लड़की का विवाह बड़े धूमधाम के साथ कर दिया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा- "राजन्! फाँसी पर लटका हुआ डाकू, यह जानकर कि रत्नवती उससे विवाह करना चाहती है, क्यों रोया और फिर क्यों हँसा? अगर जानकर भी तुमने इसका उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायगा।"

"इन अकारण बन्धुओं का ऋण चुकाये बिना ही चला जा रहा हूँ, यह सोचकर डाकू पहले तो रोया, परन्तु उस लड़की को, जिसने बड़े बड़े आदमियों से विवाह करने से इन्कार कर दिया था, उसे पति चुनता देख, हँसी आ गयी।" विक्रमार्क ने जबाब दिया।

राजा का मौन भङ्ग होते ही वेताल अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा। विक्रमार्क हताश हो वहीं खड़ा रह गया।



गरीब की दावत

*

एक दिन सवेरे कुछ काश्तकार गप्पें लगा रहे थे। गाँव का बनिया यकायक रुका और डीङ्ग मारने लगा कि ज़मीन्दार ने उसे काम पर बुलवाया था।

यह सुन एक गरीब काश्तकार ने कहा-"इसमें कौन-सी बड़ी बात है? अगर जिद पकड़ ली तो मैं भी ज़मीन्दार के घर दावत खाकर आ सकता हूँ।"

"शायद इस जन्म में नहीं।" बनिये ने कहा ।

"कहो, क्या शर्त लगाते हो?" काश्तकार ने कहा।

अगर गरीब काश्तकार जमीन्दार के घर दावत खा आया तो बनिया उसे एक जोड़ी बैल की खरीदकर देगा और अगर वह ज़मीन्दार के घर दावत न खा सका, तो काश्तकार को उसकी जमीन मुफ्त तीन साल जोतनी होगी; यह शर्त रखी गयी। बाकी काश्तकार इसके लिए गवाह थे।

ग़रीब काश्तकार ने सीधे जमीन्दार के घर जाकर पूछा-"हुजुर! मैं आपसे एकान्त में एक बात पूछना चाहता हूँ। अण्डे के बराबर सोने का दाम क्या होगा?"

"बैठो, बैठो! भोजन के बाद फुरसत से इस बारे में बातचीत करेंगे।" जमीन्दार ने कहा। जमीन्दार ने अपने साथ काश्तकार के लिए भी भोजन परोसवाया; दोनों ने भोजन किया।

"दिखाओ, कहाँ है तुम्हारा सोना। मैं तुम्हें धोखा नहीं दूँगा।" जमीन्दार ने कहा।

"मेरे पास सोना कहाँ है? मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता था कि अण्डे जितने सोने की क्या कीमत होगी? बस....!" काश्तकार ने कहा।

"चल वे हट, बेअक्ल कहीं के!" जमीन्दार ने झुञ्झलाते हुए कहा।

"दावत देनेवाले आप, और एक जोड़ी बैल खरीदनेवाला बनिया जब तक हैं, मैं भला क्यों वे बेअक्ल होऊँगा?" कहता कहता काश्तकार घर चला गया।



प्रायश्चित्त

किसी जमाने में कैरो में एक जौहरी रहा करता था। उसकी उम्र बीस के करीब थी। उसकी दुकान में अक्सर स्त्रियाँ आया करती। कहीं ऐसा न हो कि वह उनके चक्कर में पड़ जाय, वह उनकी तरफ नजर उठाकर देखता तक न था। उसके व्यवाहार की हर कोई प्रशंसा किया करता।

एक दिन उसकी दुकान में एक नीग्रो गुलाम लड़की ने आकर पूछा- "क्या फलाने की दुकान यही है? क्या आप ही दुकानदार हैं?" उसके हाँ कहने पर उस लड़की ने इधर उधर देखते हुए उसके हाथ में एक चिट्ठी रख दी।

जब चिठ्ठी खोल कर दुकानदार ने पढ़ी तो उसे अचरज हुआ और गुस्सा भी आया। उस चिट्ठी में एक प्रेम-गीत लिखा हुआ था, और लिखनेवाली का नाम भी उसमें था।

जौहरी ने झट चिट्ठी फाड़ दी। नीग्रो लड़की को जो जवाब की इन्तज़ार कर रही थी, बुरी तरह डाँट फटकार कर दुकान से बाहर कर दिया। यह देखकर लोगों ने कहा-"कितना अच्छा आदमी है!"

दो तीन साल गुज़र गये। अब अच्छी लड़की मिलने पर जौहरी को शादी कर लेने की इच्छा हुई। वह दुकान में आने जानेवाली स्त्रियों को भी देखने लगा, ताकि कोई सुन्दर, बुद्धिमती स्त्री मिल सके।

एक दिन उसकी दुकान में पाँच-छः गोरी गुलाम स्त्रियों को लेकर एक सुन्दर युवती आई। "क्यों? कोई अच्छे जवाहरात हैं क्या?" उसने पूछा। जब दुकानदार ने सिर हिलाया तो उसने उसको सोने के पाजेब दिखाने के लिये कहा। एक गुलाम स्त्री ने उसका घाघरा ऊपर कर उसके पैर

श्रीमती रज़िया रेहाना

दिखाये। उसके छोटे से पैर देखकर दुकानदार हैरान रह गया। उसने कहा-"मेरे पास का सबसे छोटा पाजेब भी आप के लिये दीला होगा।"

"यह क्या कहते हो? लोग कहते हैं कि मेरे पाँव हाथी के पाँव जैसे हैं।" युवती ने आश्चर्य से कहा।

"कौन कहता है? लगे कीड़े उसको।" दुकानदार ने उस पर मुग्ध होते हुये कहा।

"खैर, हाथ के लिये चूड़ियाँ हैं क्या?" उस नवयुवती ने पूछा। जब गुलाम स्त्री ने उसके हाथ का कपड़ा हटाया तो दुकानदार की हैरानी का ठिकाना न था।

"सबसे छोटी चूड़ी भी आपके हाथ में ढीली पड़ेगी।" उसने कहा।

"लोग तो कहते हैं कि मेरे हाथ हाथी की सूँड़ की तरह हैं, और अँगुलियाँ केलों की तरह।" युवती ने कहा।

"हो सत्यनाश कहनेवालों का। आप जैसी खूबसूरत स्त्री इन तीनों लोकों में ही नहीं है। क्या मुझसे शादी कर आप मुझे धन्य न करेंगी?" कहता कहता दुकानदार घुटने के बल बैठ गया, और गिड़गिड़ाते हुए कुछ कहने लगा।



उस स्त्री ने मुस्कराकर कहा-"मेरे पिता मुझसे बहुत नाराज हैं। कहते हैं कि मेरे छोटे छोटे बाल हैं, शक्ल भी ख़राब। टेढ़े-मेढ़े दाँत, चेहरे पर चेचक के दाग़, मुझसे कोई शादी न करेगा। और अब तुम्हें यह कहता सुन कि में बहुत खूबसूरत हूँ, मुझे तो बहुत ही ख़ुशी होती है।"

"आपके पिता का नाम क्या है, बताइये तो। मैं उनके पास जाकर शपथ खाऊँगा

कि मैं आप से शादी करना चाहता हूँ।" दुकानदार ने उससे कहा। "उनका नाम शेख आल इस्लाम है।

अगर तुम यह कहोगे कि तुम मुझ से शादी करना चाहते हो, तो वे तुरन्त मानेंगे नहीं। मेरी बेअदबी और बदसूरती की बातें सुनाकर तुम्हें डरा देंगे। तुम सब के लिये "हाँ हाँ" कहते जाना। कहना, कुछ भी हो, तुम मुझ से ही, शादी करोगे।" उस युवती ने कहा।

"मैं उनसे कब मिल सकता हूँ?" दुकानदार ने युवती से पूछा।

"कल दस बजे।" यह कह युवती, अपनी गुलाम लियों के साथ चली गई। अगले दिन सबेरे दुकानदार शेख आल इस्लाम का घर ढूँढ कर उसे देखने गया। आल इस्लाम ने दुकानदार की बात सुन कर कहा- "तुम शायद मेरी लड़की के बारे में नहीं जानते हो। वह बहुत बद-किस्मतबाली है। भूत-सी है। दिन में देखो तो रात में बुरे ख़्वाब आयें।" उसने अपनी लड़की की बुराई बहुत देर तक की।

जो कुछ भी वह कहता गया, दुकानदार भी "हाँ हाँ" कहता गया।

आल इस्लाम भी क्या करता? आखिर वह दुकानदार से अपनी लड़की का व्याह करने के लिये राजी हो गया। दुकानदार



से उसने इस बारे में दस्तावेज लिखा लिये। गवाहों के दस्तखत भी करवा लिये। दस्तावेज में लिखा गया था कि दुल्हा लड़की को उसकी कमियों के बावजूद भी, अपनी स्त्री बनाना कबूल करता है, और अगर उसने कभी तलाक दिया तो उसको २० हजार दीनारें हरजाने के तौर पर देनी होगी।

"लड़की बीमार रहती है। चारपाई से उत्तर नहीं सकती। इसलिये शादी यहीं होनी चाहिये।" आल इस्लाम ने कहा। जौहरी इसके लिये भी राजी हो गया।

विवाह हो गया। दुकानदार पत्नी के कमरे में गया और घूँघट हटाकर पत्नी को देखते ही, उसका कलेजा थम गया। दुल्हन एक दम बदसूरत थी। वह लड़की तो कतई न थी, जो दुकान में जवाहारात खरीदने आई थी।

दुकानदार निराश हो घर वापिस चला जाया। अगले दिन जब वह गमगीन, दुकान में बैठा था तो वह युवती फिर अपने गुलामों के साथ आई। उसने आते ही कहा-"शादी मुबारक हो।" दुकानदार उसे बुरा-भला कहने लगा। तब उसने आश्चर्य करते हुये कहा-"क्या तुम्हें मेरी भेजी



हुई चिठ्ठी याद नहीं है? क्या तुम नीग्रो गुलाम लड़की को भूल गये हो?" जब वह जाने को थी कि दुकानदार ने उसके पैर पकड़कर कहा-"माफ करो, मुझे अक्ल आ गई है। मुझे जैसे-तैसे इस दोजख से बाहर हटाओ।"

दुकानदार को देखकर तरस आ गई। वह उसको एक उपाय बताकर चली गई। उसके कथनानुसार वह सीधे ससुर के घर गया। जब ससुर और दामाद आराम से बरामदे में बैठे हुए थे, तो फाटक से होहल्ला करते करते ऐरे गैरे सब आने लगे। कई तालियाँ

बजा रहे थे, कोई डमरू बजा रहा था, कोई बन्दर को नचा रहा था तो कोई भालू को। कोई गन्दे गन्दे गीत गा रहा था। ऐसा लगता था, मानों कैरो के सब गुण्डे, बदमाश, बेईमान, लुच्चे-लफङ्गे वहाँ आ गये हो।" आल इस्लाम ने गरजकर कहा-"क्यों मचा रखा है यह शोर?" परन्तु जब तक दुकानदार ने उनको रुकने का इशारा न किया, तब तक वे न रुके। तब दुकानदार ने आल इस्लाम की ओर मुड़कर कहा-"ये सब मेरे रिश्तेदार हैं। मेरी शादी की खुशियाँ मनाने आये हैं।"

आल इस्लाम को काटो तो खून नहीं। "ये सब क्या तेरे रिश्तेदार हैं? अगर पहले मान होता तो मैं अपनी लड़की तुझे देता ही नहीं।" उसने कहा।

"अगर तुम मुझ से पूछते तो मैं पहले ही बता देता।" दुकानदार ने कहा।

"बिना पूछे भी बताना चाहिये था। तेरा लिखा हुआ दस्तावेज अब नहीं चलेगा।" आल इस्लाम ने कहा।

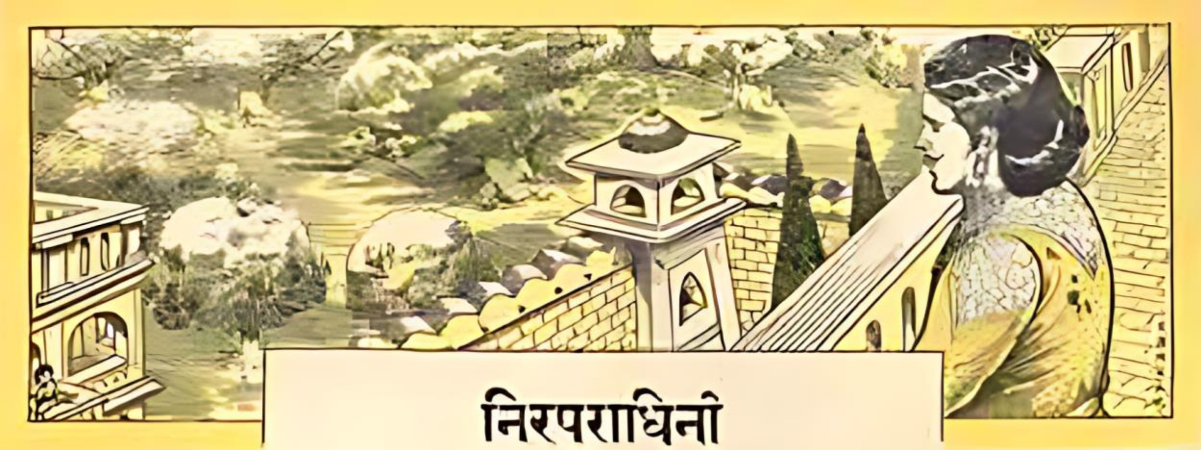
"मौत आ जाये; पर में अपनी पत्नी को न छोड़ूँगा। देखता हूँ, आप क्या करते हैं।" दुकानदार ने धमकी दी।

यह सुनकर आल इस्लाम जरा नरम पड़ा।

"बाबू! हमारी इज्जत बचा। खुदा तेरा भला करेगा। मेरी लड़की को तलाक़ दे दे। मेहरबानी कर।" उसने कहा।

दुकानदार ने तलाक़ इस तरह लिखकर दिया जैसे लिखते हुए उसे बड़ी तकलीफ हो रही हो, उससे जबर्दस्ती लिखाया जा रहा हो। बाद में उसने उस सुन्दर स्त्री से विवाह किया, जिसे वह प्रेम करने लगा था। जब उसे यह मान हुआ कि वह कैरो सुल्तान के खानदान की है, तो उसकी खुशी का ठिकाना ही न रहा।





अवन्तीनगर का एक राजा हुआ करता था। एक दिन शाम को जब वह अपने महल की छत पर टहल रहा था, तो पासवाले मकान में उसको एक सुन्दर स्त्री दिखाई दी। राजा समझदार और संयमी था। परन्तु उस स्त्री का सौन्दर्य देखते ही, वह उसकी ओर अकर्षित हुआ। उसका मन विचलित हो गया।

उसने तुरन्त नौकर को बुलाकर पूछा कि वह मकान किसका है।

"जी हुजुर! वह मकान आपके नौकर वीरभद्र का है।" सिर नवाकर नौकर ने उत्तर दिया।

"जाओ, वीरभद्र को एक बार मेरे यहाँ बुलाओ।" राजा ने हुकुम दिया।

वीरभद्र के आते ही राजा ने उसके हाथ में एक चिट्ठी देते हुये कहा- "देखो, इसको ले जाकर फलाने शहर में, फलाने आदमी को देकर, उससे जवाब लाना है। तुम यहाँ से कल सवेरे ही चले जाओ।"

"जो आज्ञा महाराज!" कहकर वीरभद्र चिट्ठी लेकर अपने घर चला गया और जाने की तैयारियाँ करने लगा।

अगले दिन सवेरे वीरभद्र के घर छोड़ कर चले जाने के बाद, घूमता घामता राजा अकेला उसके घर में गया।

वीरभद्र की पत्नी ने राजा का उचित आदर-सत्कार किया। उसके बाद उसने कहा-"आप हमारे मालिक हैं, परन्तु भगवान ही हमारे रक्षक हैं।"

"तुम क्यों इस तरह यह बात कह रही हो?" राजा ने पूछा।

"आप इस प्रकार क्यों आये हैं, मैं यह जानती हूँ। पर मैं एक बात जानना चाहती

श्री रामानन्द पचौरी



हूँ। अच्छे अच्छे पकवानो के खानेवाले उच्छिष्ट के लिए क्यों ललचाते हैं?" सिर झुकाये हुए वीरभद्र की पत्नी ने सविनय पूछा। यह सुनते ही राजा का मुँह नीचा हो गया। वह शर्मिन्दा हुआ। वह झट उठा। उसे जूते का भी ख्याल न रहा। उन्हें वहाँ छोड़ वह महल वापिस चला गया। वीरभद्र को थोड़ी दूर जाने के बाद मालूम हुआ कि यह राजा की चिठ्ठी घर में ही भूल आया था। वह फिर वापिस गया। उसे बरामदे में राजा के जूते दिखाई दिये। वह तुरन्त ताड़ गया कि राजा ने उसे क्यों दूसरी जगह चिट्ठी का बहाना बनाकर भेजा था। उसने पत्नी को देखा तक नहीं, चिट्ठी लेकर घोड़े पर सवार हो चला गया। उसको पत्नी पर पूरा सन्देह था।

जहाँ उसको जाना था, वह वहाँ गया। जिसको चिट्ठी देनी थी, उसको चिठ्ठी दी। फिर उस से जवाब लाकर राजा को उसने दे दिया। राजा ने इस काम के लिए सौ मुहरों का उसे पुरस्कार दिया।

वीरभद्र सौ मुहरे लेकर जौहरी के पास गया और वहाँ जवाहरात खरीदकर, पत्नी को पहनाने के लिये लाया। जवाहरातों को पहनने के कारण उसकी पत्नी का सौन्दर्य और भी दुगना हो गया था।

"यह राजा की कृपा से पाया हुआ इनाम है। इन्हें पहन कर कुछ दिन के लिए अपने मायके चली जाओ।" वीरभद्र ने कहा।

"अच्छा, तो मैं चली जाऊँगी।" यों कहकर दूसरे ही दिन वीरभद्र की पत्नी खूब सज-धजकर मायके चली गई।

वह मायके में एक महीना रही। परन्तु फिर उसको लिवा लाने के लिए बीरभद्र न गया। किसी को उसने भेजा भी नहीं।

आखिर उसने अपनी पत्नी के नाम एक चिट्ठी तक भी न लिखी।

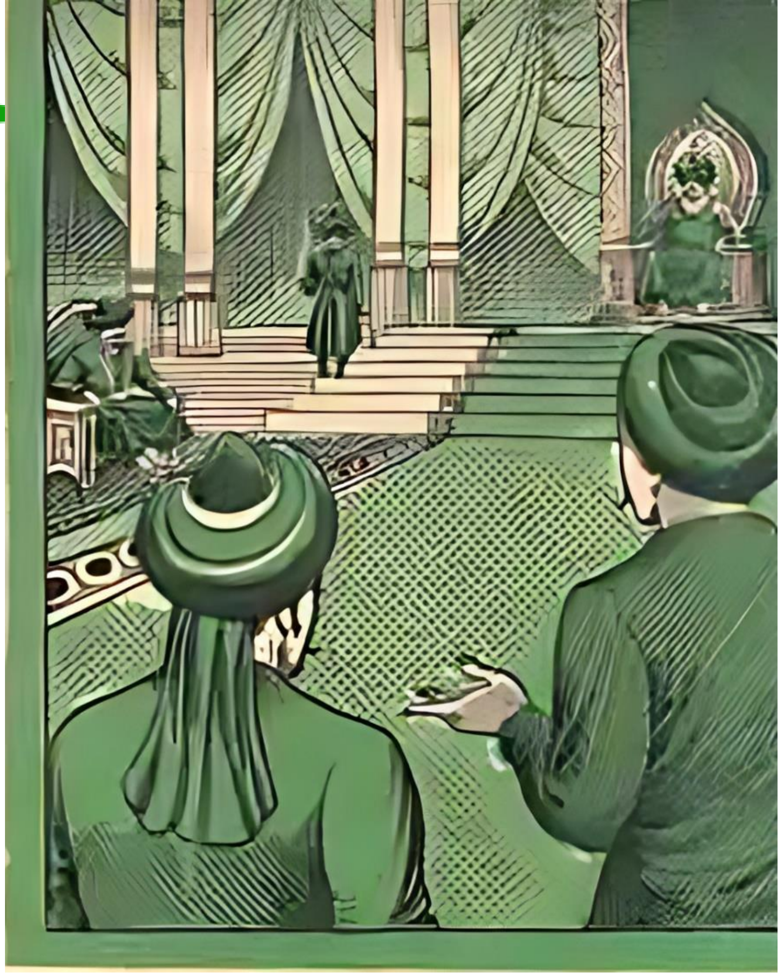
महीना खतम होते ही वीरभद्र का साला उसे देखने आया। उसकी बातें सुनने के बाद साला ताड़ गया कि वह अपनी पत्नी को हमेशा के लिए छोड़ना चाहता है। मामला काफी बिगड़ गया था।

"इधर उधर की इतनी बातें क्यों? तुम मेरी बहन को अपने घर में लाकर ठीक तरह रखते हो या तुम यह चाहते हो कि मैं राजा के यहाँ इस बारे में शिकायत करूँ?" साले ने आखिर पूछा।

"अगर तू चाहता है कि दरबार में सब लोग यह जान लें कि तेरी बहन को उसके पति ने छोड़ दिया है, तो जाकर शिकायत कर ले। परन्तु जो कुछ मैंने किया है, अभी तक किसी को कुछ पता नहीं। जो तेरी मर्जी हो सो कर।" वीरभद्र ने साले से कहा।

"मुझे भी मालूम है कि राजा से शिकायत कैसे करनी होगी।" साले ने निर्भय होकर कहा। फिर राजा के यहाँ चला गया।

दूसरे दिन वीरभद्र को दरबार में हाज़िर होने का हुकुम मिला। राजा के सिंहासन के पास न्यायाधिकारी बैठा हुआ था।



उसने वीरभद्र के साले को बुलाकर कहा-"तुम अपनी शिकायत पेश करो।"

साले ने इस प्रकार कहा-

"महाराज को इन्साफ़ करना पड़ेगा। हमारा एक अच्छा बाग़ हुआ करता था। उसके चारों ओर चार दीवारी बनाकर, हमने उसको जी-जान से पाला पोसा। फलते फूलते उस बाग़ को हमने वीरभद्र को सौंप दिया और कहा कि वह उसके फलों का आनन्द ले और बाग़ की रक्षा करे। वीरभद्र ने कुछ दिनों तक बाग़ का लाभ उठाया, फिर दीवारें तोड़-ताड़कर बाग़

को उजाड़कर चला गया। अब कहता है कि वह उस बाग़ को नहीं चाहता, अगर हम चाहते हो तो हम उसे वापिस ले सकते हैं। क्या ऐसा करना ठीक है?"

"तुम क्या कहते हो वीरभद्र?" न्यायाधिकारी ने पूछा।

वीरभद्र ने इस प्रकार जवाब दिया- "मैंने यह काम न अपनी इच्छानुसार ही किया है, न किसी के कहने पर ही। एक दिन क्या हुआ कि जब मैं अपने बाग़ में गया तो मुझे वहाँ शेर के पञ्जों के निशान दिखाई दिये। मैं समझ गया कि उस बाग़ में रहना मेरे लिए ख़तरे से खाली नहीं है। शेर के प्रति मेरा गौरव, और अपने जीवन के प्रति मेरी इच्छा; इन दोनों ने मिलकर मुझ से यह काम करवाया है। मैं लाचार हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि इसमें मैंने क्या ग़लती की है।"

राजा ने, जो तब तक चुप बैठा था, बीच में आते हुए कहा-"वीरभद्र! तुम्हें सन्देह होता सा लगता है। मैं उस बाग़ के बारे में जानता हूँ। हो सकता है। हो सकता है कि गलती से शेर उस के अन्दर चला गया हो, पर शेर को उस बाग़ में क्या मिलता? वह शेर किसी फूल पंखुड़ी, पत्र-फल, छुए बिना ही, तभी उल्टे पाँव चला गया होगा। शेर का ख्याल कर, बाग़ को छोड़ देना तुम्हारे लिए बिल्कुल लाभप्रद नहीं है। जरूरत भी नहीं है।"

दरबार के सब लोग गुमसुम बैठे थे। वीरभद्र के सिवाय इन बातों को दरबार में कोई भी न समझ सका। यह सुन वीरभद्र बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसके दूसरे ही दिन वह पत्नी को मायके से बुला लाया और आराम से पहले की तरह गृहस्थी चलाने लगा।



अपनी गल्ती कोई न जाने !

*

ब्रह्मा ने सृष्टि का कार्य समाप्त कर समस्त प्राणियों को बुलाकर कहा-"प्राणियों! जैसे मुझे बनाना था, वैसे मैंने तुम्हें बना दिया है। पर यह जरूरी नहीं है कि जैसे तुम अब हो, वैसे ही हमेशा रहो। अगर तुम्हें अपने में कोई गलती दिखाई देती है, तो उसे सुधारने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यही नहीं, अगर तुम दूसरों को गुण चाहते हो तो वे भी मैं दे सकता हूँ। एक एक करके मेरे बनाये हुये प्राणियों के बारे में विचार करते हुए आओ।



पहले पहल लंगूर ने सामने आकर कहा-"पिता जी! मुझे अपने में तो कोई कमी नहीं दिखाई देती। मैं अच्छा भला हूँ। पर जब मैं भालू के बाल और उसकी अजीब बाल देखता हूँ, तो मुझे रोना-सा आता है।"

तब भालू ने उठकर कहा-"मेरे बालों में क्या कमी है? हमेशा मजे में गरमी बनी रहती है। आपने मुझे अच्छा ही बनाया है। पर हाथी को देखकर मुझे बड़ा अफसोस होता है। वह विचारा बड़ा बेढङ्गा बना है।"

इस तरह हर प्राणी उठता, अपनी सराहना करता और दूसरों की नुक्ताचीनी करता और यह बतलाने की कोशिश करता कि ब्रह्मा ने उनको बनाने में गलती की है। ब्रह्मा ने आह भरी और निराश हो सब प्राणियों को भेज दिया। उसकी गल्तियाँ सुधारने की जिम्मेवारी भी जाती रही।



पराजित

अवन्ती देश में हेमचन्द्र नाम का एक कवि रहा करता था। वह बहुत रईस भी था। उसने कालिदास की प्रसिद्धि प्रतिष्ठा के बारे में सुन रखा था। उसे यह भी भास था कि राजा भोज के दरबार में उसका कितना आदर-सत्कार होता था। कालिदास को हराकर उसका स्थान हड़पने की, हेमचन्द्र को दुर्बुद्धि सूझी।

इसी उद्देश्य से, थोड़े-बहुत नौकर-चाकरों को लेकर हेमचन्द्र पालकी में धारा नगर गया और वहाँ एक धर्मशाला में रहने लगा। कालिदास को भी मालूम हो गया कि हेमचन्द्र उसको हराकर दरबार में उसका पद छीन लेने के उद्देश्य से ही अवन्ती देश से वहाँ आया हुआ था।

यह जानने के लिए कि हेमचन्द्र कितना प्रतिभाशाली है, कालिदास कहार का वेष धारण कर उसकी पालकी ढ़ोनेवाले कहारों में जा मिला। थोड़ी देर बाद हेमचन्द्र ने बाहर आकर कहारों को आवाज़ दी। औरो के साथ कालिदास भी सामने आया।

हेमचन्द्र के पालकी में बैठते ही कहार पालकी उठाकर चलने लगे। आगे के कहारों में से एक कालिदास था।

पालकी जा रही थी। पालकी ढ़ोने की आदत कालिदास को तो थी नहीं, इसलिए वह कन्धा बदलता जाता। यह देखकर हेमचन्द्र ने पूछा- "जय मांदोलिका दण्ड स्कन्ध किं तब बाघति।"

(पालकी के डण्डे के कारण क्या तेरा कन्धा दुख रहा है?)

हेमचन्द्र के प्रश्न में व्याकरण की एक अशुद्धि थी। "बाधते" की जगह उसने

श्री रामनारायण शास्त्री

"बाघति" कहा था। यह देखकर कालिदास को गुस्सा आ गया। उसने कहा-

"न वाघते तथा मां हि यथा बाघति बाधते।

(मुझे यह उतना नहीं दुःखा रहा जितना कि आपका "बाघति" का प्रयोग)

"क्या कहार भी इतना पण्डित हो सकता है?" हेमचन्द्र को आश्चर्य हुआ। उसने कालिदास से पूछा- "अरे तूने इतनी भाषा कहाँ सीखी?"

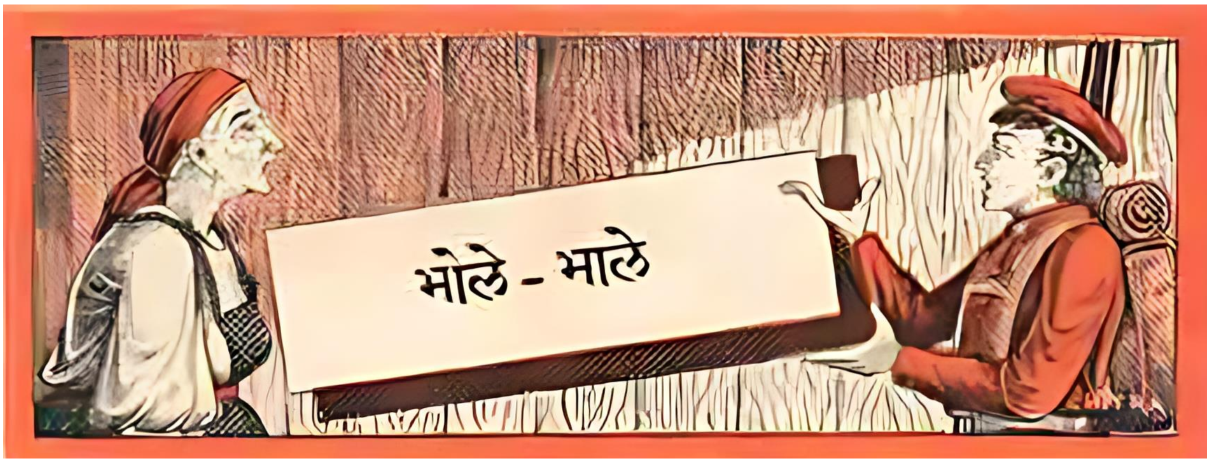
"हुजूर, में कालिदास की पालकी ढोया करता था। वे जो कुछ शिष्यों को बताये करते थे, उसका कुछ भाग मेरे कानों में भी पड़ गया। नहीं तो मैं भाषा के बारे में कुछ भी नहीं जानता।" कालिदास ने हेमचन्द्र से कहा।

"जब कालिदास का कहार ही इतना पण्डित है, तो न जाने कालिदास स्वयं कितना विद्वान होगा?" यह सोच हेमचन्द्र कालिदास को खुद देखने गया। यह जानकर कि हेमचन्द्र उसके घर जा रहा है, कालिदास एक नौकर का वेष धारण कर ड्योढ़ी के पास खड़ा हो गया। हेमचन्द्र ने पूछा-"कालिदास है क्या?" तुरन्त कालिदास ने कहा- "नखकीन खलीन लीलया नमय सुन्नमय सर्वह निरगा दुरगारिरहंसा पुर गामत गोपुरा दुबहिः।"

(नये घोड़े पर चढ़ हाथ में लगाम पकड़, खींचता, ढीला करता, गरुमन्त के वेग से, वह नगर के दरवाज़ से बाहर चला गया है।)

"कालिदास की क्योड़ी का पहरेदार ही जब इतना कुशल कवि है, तो भला मैं कालिदास को क्या जीत सकूँगा?" यह सोचकर हेमचन्द्र उसी दिन अवन्ती नगर वापिस चला गया।





बहुत दिनों की बात है कि रूस में एक बुढ़िया रहा करती थी। उसके दो लड़के थे। उनमें से एक मर गया था और दूसरा दूर किसी देश में था।

उसके जाने के तीन दिन बाद, बुढ़िया के घर एक सिपाही ने आकर पूछा-"नानी! आज रात अपने घर में मुझे ठहरने दोगी?"

"अच्छा, ठहर जाओ बेटा। पर तुम आ कहाँ से रहे हो?" बुढ़िया ने पूछा।

"मैं उस लोक से चला आ रहा हूँ।" सिपाही ने कहा।

"सचमुच ! मेरा लड़का भी हाल में गुजरा है। कहीं वह तुम्हें वहाँ दिखाई तो नहीं दिया?" बुढ़िया ने पूछा।

"दिखाई क्यों नहीं दिया? हम दोनों एक ही कमरे में रहा करते थे। एक साथ खाते-पीते भी थे।" सिपाही ने कहा।

"सच?" बुढ़िया को आश्चर्य हुआ।

"तुम्हारा लड़का वहाँ बगुलों को चरा रहा है।" सिपाही ने कहा।

"अरे! यह विचारा कितनी तकलीफें झेल रहा होगा?" बुढ़िया ने कहा।

"तकलीफ नहीं तो और क्या, नानी? वे बगुले बात बात में काँटों में जा घुसते हैं।" सिपाही ने कहा।

"तब तो उसके कपड़े सब फट फटा गये होंगे।" बुढ़िया ने कहा।

"यकीन जान, उसके कपड़े सब चीथड़े चीथड़े हो गये हैं।" सिपाही ने कहा।

"बेटा, मेरे पास चालीस गज का थान और कुछ रुपया है। उन्हें मेरे लड़के को दे सकोगे?" बुढ़िया ने पूछा।

"अच्छा नानी।" सिपाही ने कहा। रात उसने बुढ़िया के घर ही काटी। अगले

श्रीमती डी. मञ्जुलता

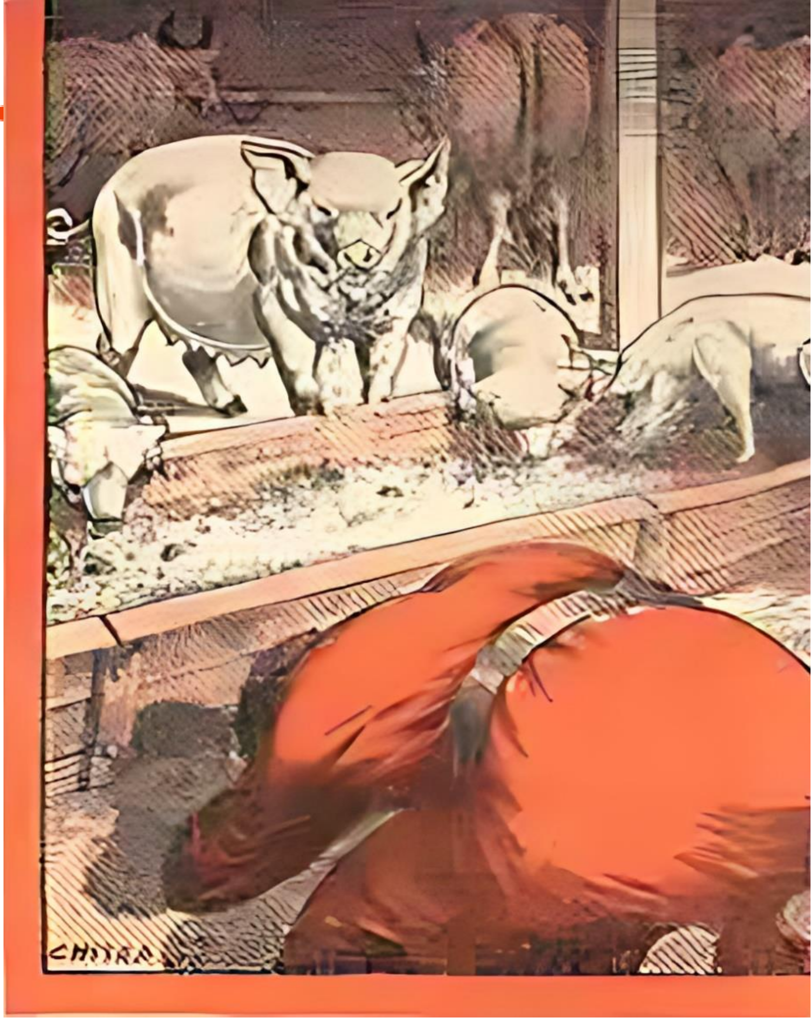
दिन थान और रुपया पैसा लेकर, वह अपने रास्ते पर चम्पत हो गया।

इस घटना के थोड़े दिनों बाद दूर देश से बुढ़िया का लड़का वापिस आ गया।

"बेटा! जब तू गया हुआ था, उस लोक से एक आदमी आया। गुज़रे हुये तेरे भाई के बारे में उसने बहुत कुछ बताया। वे एक ही कमरे में रहते हैं। भाई के लिये एक थान कपड़ा, और थोड़ा रुपया-पैसा उसके हाथ मैंने भेज दिये हैं।" बुढ़िया ने अपने दूसरे लड़के से कहा।

"बड़ी अक्लमन्दी का काम किया। तेरी आँखों में कोई धूल झोंक गया है। न जाने तेरे जैसे भोले-भाले इस दुनियाँ में कितने हैं। उन पर अक्लमन्दी दिखाकर में अपना उल्लू सीधा करूँगा।" कहता कहता बुढ़िया का लड़का घर से निकल गया।

जाते जाते एक गाँव पड़ा। उस गाँव के जमीन्दार के घर के पास एक सूअरी और उसके बच्चे कुछ खा रहे थे। बुढ़िया के लड़के ने, सूअरी के सामने साष्टाङ्ग नमस्कार किया। यह सब घर की खिड़की में से जमीन्दार की पत्नी देख रही थी। उसने दासी



को बुलाकर कहा-"जाकर पता लगाओ, क्यों वह किसान इस प्रकार साष्टाङ्ग नमस्कार कर रहा है।" दासी ने आकर बुढ़िया के लड़के से पूछा-"हमारे सूअरी के सामने क्यों यों साष्टाङ्ग नमस्कार कर रहे हो?"

"भाई! यह सूअरी मेरी पत्नी की सम्बन्धी है। कल मेरे लड़के का विवाह है। विवाह करवाने के लिये सूअरी को, और दुल्हन का साथ देने के लिये सूअरी के बच्चों को, तुम्हारी मालकिन भेजने की इजाजत दे सकेंगी?" बुढ़िया के लड़के ने कहा।

दासी की बात सुनकर ज़मीन्दार की पत्नी ने दासी से कहा-"शादी के लिये

सूअरों को बुलाने जाया है। कितना बेअक्ल है! खैर, हमें क्या? उसे देखकर दुनियाँ हँसेगी। उस सूअरी को मेरा उनी कोट पहना कर, बच्चों के साथ, घोड़ा गाड़ी मैं बिठाकर धूम-धाम से भिजवाओ।"

सूअरी और उसके बच्चों को गाड़ी में बिठा, बुढ़िया का लड़का घर की ओर चला। जब शिकार खेलकर जमीन्दार घर वापिस आया तो उसकी पत्नी ने अट्टहास करते हुए कहा-"हँसते हँसते पेट में बल पड़ गये। यहाँ एक किसान आकर हमारी सूअरी के सामने साष्टाङ्ग नमस्कार करने लगा। उसने कहा कि सूअरी उसकी पत्नी की सभी सम्बन्धिन थी। उसने प्रार्थना की कि सूअरी और और उसके बच्चों को दुल्हन का साथ देने के लिये भेजा जाय।"

"तब क्या था, तूने भेज दिया होगा? ठीक है न?" जमीन्दार ने कहा।

"हाँ! सुअरी को अपना उनी फोट पहनाकर बच्चों के साथ घोड़ा गाड़ी में बिठाकर भेज दिया है।" पत्नी ने कहा।

"तू ही बेअक्ल है, वह नहीं है।" कहकर जमीन्दार अपने घोड़े पर सवार होकर बुढ़िया के लड़के का पीछा करता



करता निकल गया। बुढ़िया का लड़का ताड़ गया कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने गाड़ी झट घने जङ्गल में हाँक दी और सड़क पर टोपी ज़मीन पर रखकर बैठ गया।

जमीन्दार भी जल्दी जल्दी यहाँ आ पहुँचा। "ऐ! किसी किसान को घोड़ा गाड़ी में सूअरी और उसके बच्चों को भगा कर ले जाते हुए इस तरफ देखा है?" उसने बुढ़िया के लड़के से पूछा।

"देखा जरूर है, हुजूर! पर उसको इधर से गये हुए तो बहुत देर हो गयी है।" बुढ़िया के लड़के ने कहा।

"उसे पकड़ना है, किस तरफ गया है? " ज़मीन्दार ने पूछा।

"क्या आप इस इलाके की पगडण्डियाँ जानते हैं?" बुढ़िया के लड़के ने पूछा।

"क्या तुम खुद जाकर उसे पकड़ सकोगे?" ज़मीन्दार ने पूछा।

"मैं? मेरी टोपी के नीचे एक बटेर है। मैं उसकी रखवाली कर रहा हूँ।" बुढ़िया के लड़के ने कहा।

"तुम्हारी बटेर मैं देखता रहूँगा।" जमीन्दार ने कहा। "वह चली गयी तो मालिक मेरी जान ले लेगा।" उसने कहा।



"कितने की है यह बटेर?" जमीन्दार ने पूछा।

"तीन सौ से कम न होगी।" बुढ़िया के लड़के ने कहा।

"अगर वह चली भी गयी तो में उसका दाम दे दूँगा।" जमीन्दार ने कहा।

"बातों का क्या ठिकाना? जितनी मर्जी उत्नी बनायी जा सकती हैं।" बुढ़िया के लड़के ने कहा।

"अच्छा! तो तुझे यकीन न हो तो यह ले तीन सौ रुबेल।" जमीन्दार ने बुढ़िया के लड़के से कहा।

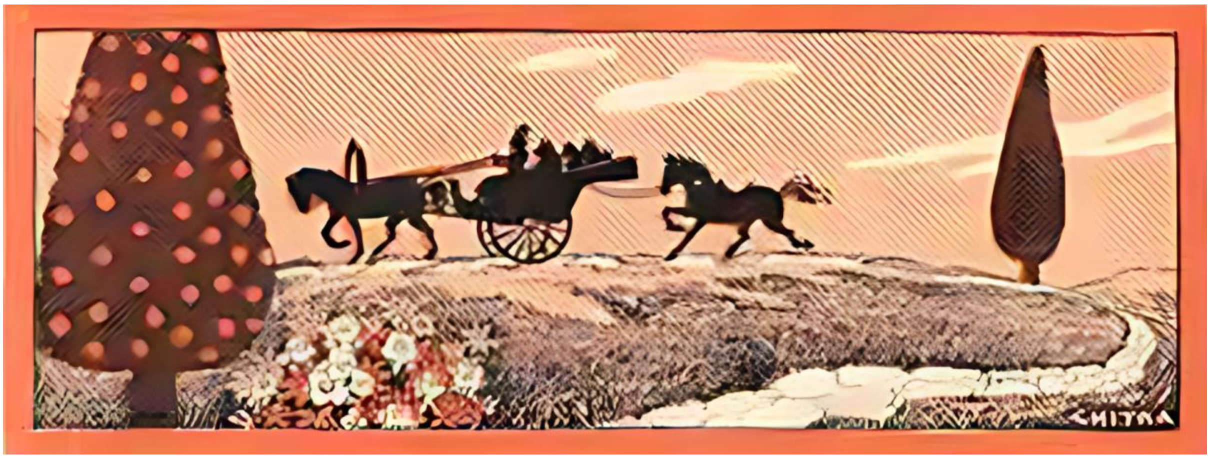
बुढ़या के लड़के ने तीन सौ रूबेल ले लिये, और जमीन्दार के घोड़े पर चढ़, पेड़ों के पीछे छुपाई घोड़ा गाड़ी लेकर वहा से नौ दो ग्यारह हो गया।

जमीन्दार घण्टों इन्तज़ार करता रहा। पर वह न आया। अन्धेरा होने को था।

"देखें, तो सचमुच इस टोपी के नीचे बटेर है कि नहीं? अगर है तो वह वापिस जरूर आयेगा। अगर नहीं है तो उसकी प्रतीक्षा करना व्यर्थ है।" जमीन्दार ने टोपी उठाई। उसके नीचे कुछ भी न था।

"यह बदमाश चोर था। यह हो न हो, वह ही होगा, जिसने मेरी पत्नी को धोखा दिया है।" सोचता सोचता जमीन्दार घर वापिस चला गया।

बुढ़िया के लड़के ने जमीन्दार के घोड़े, गाड़ी, सूअरी, रुपया-पैसा सब कुछ घर ले जाकर अपनी माँ को दिखाया। उसने अपनी माँ से कहा- "देखो माँ। इस दुनिया में कई तुम से भी अधिक मोले-भाले हैं। अगर ऐसे लोग न होते तो आज मुझे इतनी सम्पत्ति नहीं मिलती। वे दोनों बड़े आराम से अपने दिन काटने लगे।



मांस क्या हुआ ?

एक बार, गोहा बाज़ार जाकर वीस भर मांस लाया। उसने मांस पत्नी को देते हुए कहा-"मैं काम पर जरा बाहर जा रहा हूँ। ठीक भोजन के समय वापिस आ जाऊँगा । उस बीच में तुम इस माँस का कबाब तैयार करो।"

गोहा के कथनानुसार उसकी पत्नी ने कबाब तैयार कर दिया। अभी भोजन का समय होने में काफी देरी थी। इसलिये उसने कबाब का स्वाद दिखाने के लिये भाई को बुलवा भेजा। दोनों ने मिलकर सारा कबाब खा लिया।

ठीक भोजन के समय गोहा भोजन के लिये आ बैठा। उसने कबाब के परोसे जाने की इन्तज़ार की। पर उसको परोसा न जाता देख उसने पत्नी से पूछा- "कबाब बनाने के लिये कहा था न? क्यों नहीं बनाया।"



"बनाने की सोच ही रही थी कि बिल्ली इस बीच में सारा मांस ले गई। मैं क्या करती ?" गोहा की पत्नी ने कहा।

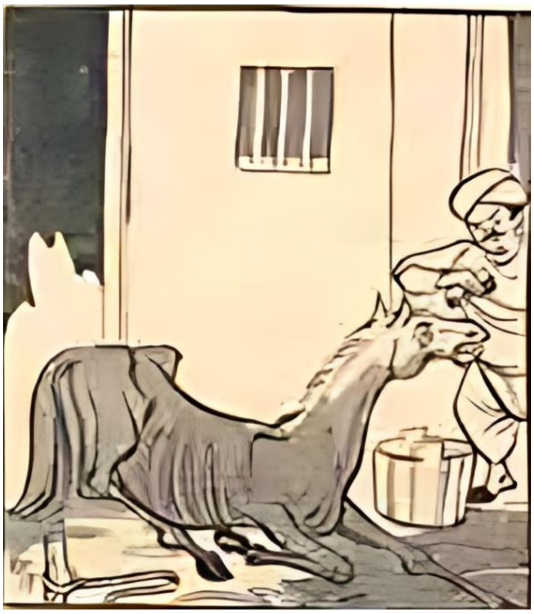
झट गोहा खाता खाता उठ खड़ा हुआ, और उसने तराजु लेकर बिल्ली को तोला। बिल्ली ठीक बीस भर निकली।

"अरे पगली ! अगर यही मांस है तो बिल्ली कहाँ है ?" उसने पत्नी से पूछा।

व्यर्थ सेवा

*

एक जमीन्दार ने बहुत हिचक-झिझक के बाद, बहुत-सा रुपया लगाकर एक बढ़िया अरबी घोड़ा खरीदा। जमीन्दार उसको देखकर फूला न समाता था, उसे और कुछ सूझता ही नहीं था। घोड़े के लिये जमीन्दार ने महल-सा अस्तबल भी बनवाया। उसे डर था कि साईस उसकी ठीक तरह से मालिश करेगा कि नहीं, इसलिये वह स्वयं दिन में दो बार उसकी मालिश किया करता।



जमीन्दार घोड़े को जी-जान से देख रहा था, फिर भी घोड़ा दिन प्रति दित कमज़ोर होता गया। उसका चिकना चिकना चमड़ा सुख-सा गया। हड्डियाँ बाहर निकल आई।

आखिर, जमीन्दार ने अपने घोड़े से कहा- "मैं इतने लाग लगाव से खुद तेरी परवरिश कर रहा हूँ। मैं स्वयं तेरी मालिश भी करता हूँ। फिर क्यों तू इस तरह काँटा हो रहा है, जैसे कोई खाने-पिलानेवाला ही न हो?"

इस प्रश्न का उत्तर दबी जबान में घोड़े ने यों दिया-

"मुझे इतने बड़े महल में रख आपके स्वयं मालिश करने से मेरा क्या फायदा होता है? आपने मेरे पेट की परवाह ही न की। न मुझे मालिश चाहिये, न कुछ और ही। मुझे वक्त पर थोड़ा खाना दौजिये, बस, वही मेरे लिए बहुत कुछ है। मैं फिर हट्टा-कट्टा हो जाऊँगा।" यह सुन जमीन्दार बहुत शर्मिन्दा हुआ।

गधे की शिक्षा!

कोई सज्जन कहीं से आये। वे हर किसी से कहते फिरते कि वे बड़े विद्वान हैं, और मूर्ख से मूर्ख आदमी को भी पढ़ा-लिखा सकते हैं।

कानों कान यह बात राजा के पास भी पहुँची। उसने उस विद्वान को दरबार में बुलाकर पूछा-"क्यों भाई! सुना है, तुम मूर्खातिमूर्ख को भी पढ़ा-लिखा सकते हो। क्या यह सच है?"

"जी महाराज ! अगर पैसे देनेवाला कोई दाता हो, तो दस वर्ष मैं गधे को भी वेद-मन्त्र सिखा दूँ।"



"हमारे यहाँ एक गधा है। उसको सिखाने के लिए क्या लोगे?" राजा ने पूछा।

"दस वर्ष की अवधि दीजिए और हर महीने हज़ार मुहरें दिलवाइये।" विद्वान ने नत मस्तक होकर कहा।

अगर दस साल बाद गधे ने वेद नहीं सुनाये तो तुम्हारा सिर कटवा दूँगा।" राजा ने कहा।

"बेशक कटवा दीजिए।" विद्वान ने कहा। राजा ने उसको एक हज़ार मुहरों के महावार वेतन पर, गधे का शिक्षक नियुक्त कर दिया।

यह देख एक मित्र ने विद्वान से पूछा-"यह क्या किया? क्या तू सौ वर्षों में गधे से वेद पाठ करा सकेगा? तूने अपनी जिन्दगी, लगता है, दस वर्ष तक ही सीमित कर ली है। क्यों ?"

"यह क्यों सोचते हो कि दस वर्ष में मैं ही मरूँगा? इस बीच में राजा मर सकता है, नहीं तो गधा मर सकता है; क्यों..?" विद्वान ने कहा।

मूर्ख बुढ़िया

एक सिपाही घर जा रहा था। चलते चलते उसके पैर चक्की हो गये थे। भूख भी जोर से लग रही थी। एक गाँव में पहुँचकर किसी घर का किवाड़ खटखटाया। एक बुढ़िया ने किवाड़ खोला।

"नानी, भूख के मारे मरा जा रहा हूँ। थोड़ी-सी माण्ड दे दो।"

बुढ़िया बड़ी कञ्जूस थी। "बेटा! मैं कल से सूखी मर रही हूँ।"

वह सरासर झूठ बोली। इस बीच में सिपाही की नज़र एक कोने में रखी बिना मूठे की कुल्हाड़ी पर पड़ी।

"कुल्हाड़ी भी होती तो कुछ बनाया जा सकता था।"

"कुल्हाड़ी! मैंने तो कभी सुना नहीं।" बुढ़िया ने कहा।

"अच्छा! एक हँडिया दो। अभी दिखाये देता हूँ।" सिपाही ने कहा। उसने कुल्हाड़ी को धोकर हँडिया में रखा और उस में पानी डालकर चूल्हे में आग जला दी और थोड़ी देर बाद उसने उसको चखा। अगर थोड़ा नमक होता तो अच्छा होता।" उसने कहा।

"ठहर, में दिये देती हूँ।" बुढ़िया ने नमक लाकर दे दिया। सिपाही ने नमक हँडिया में डाल दिया। फिर उसने कहा-"अब कुछ नहीं चाहिए, सिवाय मुट्ठी भर चावल के।"

"मैं लाये देती हूँ, ठहर।" बुढ़िया ने चावल लाकर दे दिये। सिपाही ने चावल हैंड़ियाँ में डालकर माँड़ तैयार की। फिर माँड़ का स्वाद चखकर उसने कहा- "अगर इसमें थोड़ा मक्खन पड़ जाये तो कहने ही क्या?"

बुढ़िया ने मक्खन भी लाकर दे दिया। सिपाही ने उसको माँड़ में डाल दिया। चूल्हे पर से हँडिया उतार उसने पूछा-"अब स्वाद न देखोगी?"

बुढ़िया ने स्वाद चखकर कहा-"क्या बढ़िया है। मुझे नहीं मालूम था कि कुल्हाड़ी की माँड़ इतनी अच्छी होती है।"

सिपाही मन ही मन बुढ़िया की नादानी पर बहुत हँसा और चला गया।

लोभ बुरा है

*

एक भेड़िये ने एक लोमड़ी से दोस्ती कर ली। दोस्ती दोस्ती में वह उस पर धौंस भी जमाने लगा। क्योंकि भेड़िया ताकतवर था। लोमड़ी को झुकना ही पड़ा।

जब कभी भेड़िये को खाने को न मिलता तो वह लोमड़ी को डराया करता- "मुझे खाना दिलाता है कि या मैं तुझे ही खा जाऊँ?"

क्योकि लोमड़ी चतुर थी, वह जहाँ तहाँ जैसे तैसे उसको खाना दिला दिया करती थी।



एक दिन भेड़िये ने लोमड़ी से कहा-"मैं भूख के मारे मरा जा रहा हूँ। खाना दिलाता है या मैं तुझे ही मारकर खा जाऊँ?"

"हुज़र, जल्दबाजी न दिखाइये। आज ही एक धोबी ने बकरी काटी है और सारा मांस एक हाँडी में रख दिया है। अन्धेरा होते ही हम जाकर खा सकते हैं।" लोमड़ी ने कहा ।

अन्धेरा होने के बाद भेड़िया और लोमड़ी मिलकर धोवी के घर गये। उसके घर के दीवार में एक छोटा छेद था। दोनों उसमें से अन्दर घुस गये। घड़े में मांस था। लोमड़ी ने थोड़ा खाकर कहा-"आइये, अब हम चलें।" पर भेड़िये ने एक न सुनी।

"मिला भोजन क्यों छोड़ा जाय? जबतक मैं पेट भर न खा लूँगा, में नहीं आऊँगा।" उसने कहा।

आहट सुनकर धोबी आया। लोमड़ी दीवार के छेद में से बाहर भाग गई। परन्तु भेड़िया छेद में ही फँस गया। खूब खा पीकर वह फूल गया था। धोबी ने उसको लट्ठ से इतना पीटा कि वह मर गया।

CHANDAMAMA (Hindi) DECEMBER 1955 Regd. No. M. 8452



रंगीन चित्र-कथा चित्र—६